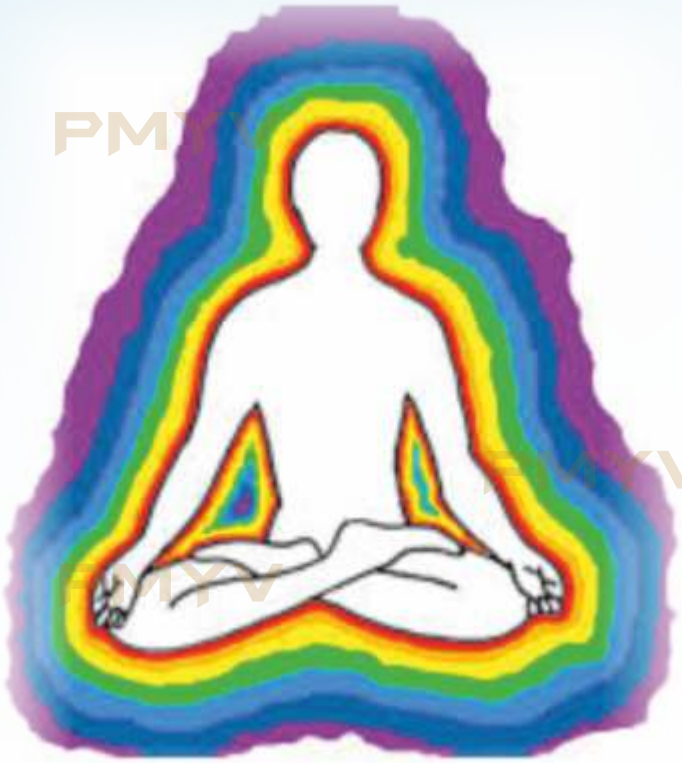

सात शरीर

शास्त्रों में बताया गया है कि हमारा शरीर मात्र एक ही नहीं है, अपितु इसके अलावा कई शरीर इस शरीर के अन्दर समाहित हैं, एक शरीर के भीतर दूसरा शरीर, दूसरे के भीतर तीसरा शरीर है और जब तक इन सभी **शरीरों की सीमाओं** को हम पार नहीं कर लेते, तब तक ब्रह्माण्ड को स्पर्श नहीं किया जा सकता, अपने अन्दर ब्रह्माण्ड की स्थापना नहीं की जा सकती।

जब अन्दर **ब्रह्माण्ड** की स्थापना हो जाती है, तब फिर बाहर देखने की कोई जरूरत ही नहीं होती। **भगवान श्रीकृष्ण** ने **अर्जुन** को **वक्षस्थल** में **ब्रह्माण्ड** को दिखा कर इसी बात को सिद्ध किया था कि वे इन सात शरीरों की **सीमा** से परे हैं और उनके अन्दर पूरा **ब्रह्माण्ड** व्याप्त है।

यह समस्त **अंतरिक्ष** अत्यन्त विस्तारित है... इसका कोई ओर-छोर नहीं... अनन्त-अनन्त **ब्रह्माण्डों** से निर्मित हुआ है यह, अत: इसकी सीमा अपार है... इसीलिये **ऋषियों** ने इसे **महाशून्य** की संज्ञा से विभूषित किया है...अनगिनत रहस्य छुपे हुए हैं इसमें...

और इन विभिन्न रहस्यों में से सबसे अधिक रहस्यमय है मानव शरीर। स्वयं कृष्ण ने गीता में कहा है-

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम ।
मम देहे गुडोश यधान्यद्रष्टुमिच्छिसि ॥

जैसे यह ब्रह्माण्ड बाहर है, वैसे ही पूर्ण सौन्दर्य के साथ पूरी तरह से शरीर में भी स्थापित है... सब कुछ!

और ऐसा नहीं, कि यह वक्तव्य केवल कृष्ण ने ही दिया हो, ऐसा नहीं कि केवल कृष्ण ने ही ऐसी बात कही हो, क्योंकि ठीक इसी बात की ओर जीसस भी इंगित करते हैं, जब वे कहते हैं-

"The kingdom of god is within you."

इसलिये वास्तविक रूप में जो कुछ भी बाहर दृष्टिगोचर होता है, वही हमारे शरीर में भी स्थापित है और अगर **ब्रह्माण्ड अनन्त** है, तो हमारे शरीर की सीमाये भी अनन्त हैं...

परन्तु आजकल लोग अत्यधिक **'धार्मिक'**(धर्म संकीर्ण) हो गये हैं और धर्म से उनका सहज-मतलब होता है **'सम्प्रदाय'** जैसे **हिन्दू, मुस्लिम, जैन, क्रिश्चियन...**और ये जो सम्प्रदाय हैं, केवल बाहरी धार्मिक लोगों के हैं आप जितने भी ऐसे धार्मिक लोगों को देखेंगे, उनकी आत्मा मरी हुई है, वह गहरी मूर्छा में है, वह अचेतन पड़ी हुई है...

तभी तो उनके लिए **हिंसा, लूटमार, दंगे** एक सहज कार्य हैं... पर वास्तव में **धर्म का अर्थ होता है खुद को जानना, स्वयं के स्वभाव से अवगत होना, अपने असली स्वभाव में जीना, क्योंकि आप जब तक स्वयं को नहीं जानेंगे, तब तक कृष्ण, महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट को जानने से भी क्या हो जाएगा?** और ये नाम उन गिन-चुने लोगों के हैं, जिन्होंने दूसरे को जानने की अपेक्षा स्वयं को ही जाना था,जो अपने वास्तविक स्वभाव को जान सके थे, उसमें स्थिर हो सके थे...

और यह **स्थिरता** तभी पाई जा सकती है, जब व्यक्ति केवल बाहर न भटक कर अपने अन्दर उतरने की क्रिया करता है,

अपनी ही खोज करने की दिशा में अग्रसर होता है, क्योंकि जो यह **भौतिक शरीर** है, इसके अन्दर सात शरीर और हैं, जिन्हें हमने पहले कभी अनुभव नहीं किया और जिनका अनुभव ही स्वयं को जान लेने की प्रक्रिया है...

और ठीक ऐसे ही **सात शरीर** हमारी देह के बाहर भी हैं और इन दोनों में अंतर यह है, कि जहां देह के अंतर वाले शरीर **आध्यात्मिक यात्रा** के परिसूचक हैं, वहीं बाह्य सात शरीर **भौतिक यात्रा** की सीढ़ियां हैं।

आज के युग में मानव के **बाह्य शरीर** ही अधिक जाग्रत रहते हैं, क्योंकि जन्म से लेकर मृत्यु तक उसकी सारी खोज बाहर की ही है, बाह्य है... उसे धन चाहिये, पद चाहिये, प्रतिष्ठा चाहिये, प्रेमिका चाहिये और चूंकि ये सब बाहरी भावनाये हैं, अतः मानव के बाह्य शरीर आन्तरिक शरीरों की अपेक्षा ज्यादा जाग्रत रहते हैं...

फिर भी चाहे वह कितनी ही कोशिश कर ले, उसके ये शरीर भी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाते और इसलिये वह जीवन से चाहे कितना ही प्राप्त कर ले, उसकी **लिप्सा** कभी समाप्त नहीं होती, उसकी दौड़ कभी खत्म नहीं होती। उसे और अधिक धन चाहिये और बड़ा पद चाहिये और अधिक प्रतिष्ठा चाहिये तथा ऐसे ही वह अपना सारा जीवन एक **मृगतृष्णा** में बिता देता है।

पर यह उसकी सबसे बड़ी बेवकूफी होती है, क्योंकि वह हवा में महल खड़ा करना चाहता है, क्योंकि वह एक-एक पत्ते को पानी देकर वृक्ष को छायादार करना चाहता है।

जब कोई इमारत बनती है, तो पहले नींव खोद कर उनकी बुनियाद तैयार की जाती है और जितनी गहरी और **मजबूत नींव** होती है, उतनी ही मजबूत इमारत बनती है... अर्थात् धरती के अन्दर जितनी गहरी और मजबूत नींव होगी, उतनी ही मजबूत इमारत धरती के बाहर होगी।

इसी तरह व्यक्ति को **छायादार वृक्ष** प्राप्त करने के लिए पत्ते-पत्ते में पानी देने की आवश्यकता नहीं है। इसकी अपेक्षा अगर **जड़ों** में ही पानी दे दिया जाय, जो वृक्ष स्वतः ही **घना** और **छायादार** हो जायेगा, उसकी जड़ें जितनी ही स्वस्थ एवं गहरी होंगी, उतनी ही ऊँचाई वह वृक्ष प्राप्त करेगा। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति बाहर की दौड़ में ही लगा हुआ है... जो भी काम करता है, बाह्य करता है, उसका सारा व्यक्तित्व बाह्य है, ऊपरी है, सारहीन है... लेकिन वह हमेशा **असंतुष्ट** ही रह जाता है, क्योंकि वह नींव को भूल ही जाता है, जड़ों को भूल ही जाता है।

मूर्खता में वह यह भूल जाता है, कि बाहर जो कुछ भी है, मात्र अन्दर का **प्रतिबिम्ब** है। यदि वह अपने आन्तरिक शरीरों को ही जाग्रत कर ले, **पोषण** दे, तो फिर अनेक प्रतिबिम्ब जो बाहर दिखाई देते हैं, स्वतः ही **सुदृढ़** हो जायेंगे...

पर ये सात शरीर कौन से हैं और इन्हें किस प्रकार से जाग्रत किया जा सकता है?

वे सात शरीर और उनके रंग निम्न हैं

भौतिक शरीर (PHYSICAL BODY & VIOLET)
आकाश शरीर (ETHERIC BODY & BLUE)
सूक्ष्म शरीर (ASTRAL BODY & YELLOW)
मनस शरीर (MENTAL BODY & ORANGE)
आत्म शरीर (SPIRITUAL BODY & WHITE)
ब्रह्म शरीर (COSMIC BODY & SILVERY)
निर्वाण शरीर (ABSOLUTE BODY & GOLDEN)

यह जो देह (GROSS BODY) है, यह ठीक मध्य में है और इसके अन्दर सात सूक्ष्म शरीर हैं, जो कि ऊपर उल्लेख किये जा चुके हैं और ठीक इस शरीर के बाहर भी आभा मण्डल की सात परतें हैं, जिनके रंग ऊपर बताए जा चुके हैं...

तो जो व्यक्ति भौतिकता में ज्यादा लिप्त है, या यों कहें, कि जो व्यक्ति **भौतिक शरीर (PHYSICAL BODY)** में है, उसका आभामण्डल **बैंगनी** रंग लिये होगा... अगर व्यक्ति **मनस शरीर (MENTAL BODY)** में है, तो उसका रंग **नारंगी** होगा आदि।

व्यक्ति यदि चाहे तो इच्छानुसार अपने आन्तरिक शरीरों को जाग्रत कर सकता है और ऐसा करने से स्वतः ही उसका **आभामण्डल** पूर्ण विकसित हो जायेगा, उसे **आध्यात्मिक उत्थान** के साथ-साथ सांसारिक ऊँचाइयां भी प्राप्त हो सकेंगी... और यह सब सम्भव है **'ध्यानातीन साधना'** से...

ध्यानातीन साधना का अर्थ है- **अपने आन्तरिक शरीरों को झंकृत करने की साधना, उनको जाग्रत कर उनमें एक अद्वितीय संगीत पैदा करने की साधना,** क्योंकि आज का मानव **एक पशु** की तरह **बन्धनग्रस्त** जीवन जीते हुए अपने वास्तविक स्वरूप को ही भूल गया है, अपने वास्तविक **परिचय** एवं **स्वभाव** को उसने विस्मृत कर दिया है, वह भूल गया है, कि उसका उद्भव कहां से हुआ है, वह उस शक्ति की ही एक चिंगारी है, जिसे **ब्रह्म** कहते हैं।

इस साधना से एक-एक तह पार करता हुआ व्यक्ति अपने **आन्तरिक शरीर** में उतर सकता है, यह कोई बड़ी बात नहीं है और जैसे-जैसे वह अन्दर उतरेगा, वैसे-वैसे वह **'अवेयर'** होता जायेगा, अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेगा और आध्यात्म की सबसे बड़ी घटानाये ध्यान एवं समाधि के रूप में स्वतः घट जायेगी। जब आन्तरिक **शरीर विकसित** एवं **पुष्ट** होंगे, तो स्वतः ही **आभामण्डल** भी पूर्ण विकसित हो जायेगा। फिर व्यक्ति के अन्दर अपूर्व **सम्मोहन की स्थिति** हो जायेगी, **बुद्ध के समान ही उसकी वाणी अत्यन्त मधुर हो जाएगी** और सारे शरीर से एक **अपूर्व गंध** निःसृत होने लगेगी, उसका सारा शरीर **स्वस्थ, निरोग, दर्शनीय** बन जायेगा, लोग उसके पास आने के लिये, उससे बात करने के लिये लालायित होंगे और हमेशा उसके इर्द-गिर्द मंडराने लगेंगे, उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व अनिवर्चनीय बन जायेगा।

ऐसे व्यक्ति को **यश, सम्मान, धन, ऐश्वर्य सहज** ही प्राप्त हो जायेगा। सांसारिक पराकाष्ठा प्राप्त होने पर भी वह उसमें अलिप्त रहता है, **भोगों को भोगता** हुआ भी अछूता रहता है और सबसे बड़ी बात यह है, कि पहली बार संतुष्टि प्राप्त करता है, पहली बार असीम आनन्द का अनुभव करता है।

निधि श्रीमाली